तृतीय अध्याय

'रामचरितमानस' में वर्णित प्राणि - सृष्टि का प्रसंगानुसार निर्देश

तृतीय अध्याय

'रामचरितमानस' में वर्णित प्राणि-सृष्टि का प्रसंगानुसार निर्देश

भारतीय संस्कृति में सम्पूर्ण चराचर सृष्टि का विचार किया गया है इसलिये पशु, पक्षी, वन्य जीव, वृक्ष, वनस्पति आदि के प्रति आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित किया गया है। 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' के सिद्धान्त का अनुसरण करने के कारण जीवन को देखने की भारतीय दृष्टि अत्यन्त व्यापक है। भारतीय किसान गाय को अपने परिवार का अंग मानता है, मस्तक पर कुंकुम लगाता है, सम्मान से गो - ग्रास निकालता है और फिर स्वयं भोजन करता है। कौअे को काकबलि दी जाती है और मोर को पवित्र माना जाता है। नीलकण्ठ का दर्शन शुभ माना गया है। कोकिला को सम्मान देने के लिये कोकिला - व्रत का विधान हैं। नाग को देवता मान कर पूजा की जाती है।

भारतीय संस्कृति पशु-पक्षियों के समान ही वृक्ष, वनस्पति आदि के साथ भी प्रेम का सम्बन्ध जोड़ती हैं। तुलसी की घर-घर पूजा की जाती है एवं उसका विवाह भी किया जाता है। वट - वृक्ष की जनेऊ की जाती है। उसकी प्रदक्षिणा - पूजा भी करते हैं। नदियों को मातृवत् पूजा जाता हैं, क्योंकि वे अपने जीवन - रस से हमें जीवन-दान देती हैं। महान्, भव्य, उदार एवं क्षमाशील पृथ्वी को भी माता माना गया है।

मानवेतर प्राणि-सृष्टि के चित्रण की परम्परा :

भारतीय साहित्य में मानवेतर प्राणि - सृष्टि की रचना की एक सुदीर्घ परम्परा रही है। विष्णु शर्मा द्वारा रचित 'पंचतन्त्र' में पशु - पक्षियों को वार्त्तालाप करते हुये एवं एक दूसरे के सुख: दु:ख में सहभागी होते हुये दिखाया गया है। जातक कथाओं में भी मानवेतर प्राणियों से सम्बन्धित कथायें हैं। पौराणिक कथाओं के अनुसार कई प्राणी हमारे देवताओं से उनके वाहनों के रूप में जुड़े हुये हैं। अत: देवताओं के साथ हम उन्हें भी पवित्र मान कर पूजते हैं।

'मेघदूत' में कालिदास ने यक्ष का सन्देश यक्षिणी को मेघ के द्वारा भिजवाया है। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में कालिदास शकुन्तला के मुख से कहलाते हैं कि 'पिता की आज्ञा है इसलिये ही मैं इन वृक्षों को पानी नहीं पिलाती; बल्कि मेरा उनसे सहोदर भाई के समान प्रेम है -

न केवलं तात नियोग एव,
अस्ति मे सोदरस्नेह एतेषु।

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

कण्व ऋषि वृक्षों से पतिगृह जाती हुई शकुन्तला को आज्ञा देने के लिये कहते है -

सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।

प्रेममयी शकुन्तला के वियोग में वृक्ष एवं लतायें अश्रु गिराती हैं। 'नल-दमयन्ती' में हंस का उपयोग दूत के रूप में किया गया है। मलिक मोहम्मद जायसी के 'पद्मावत' में नागमति द्वारा कौअे को दूत बनाकर भेजा गया है। भक्त मीराबाई कौअे से अपना काटा हुआ कलेजा अपने प्रियतम के सामने ले जाकर खाने के लिये कहती है। राजस्थानी लोक - साहित्य में नायिका नायक से मिलाने की प्रार्थना कुरज (क्रौंच) पक्षी से करती है। प्रेयसी पिया-मिलन होने पर कौअे को उसकी चोंच सोने से मढ़वाने एवं खीर-खाँड खिलाने का आश्वासन देती है।

महर्षि वाल्मीकि ने 'रामायण' में वानर, भालू, पशु-पक्षी आदि मानवेतर प्राणियों की रचना की थी। इससे यही सिद्ध होता है कि भारतीय साहित्य में मानवेतर प्राणि-सृष्टि की रचना की एक सुदीर्घ परम्परा रही है।

तुलसीदास द्वारा रामचरितमानस में मानवेतर प्राणि-सृष्टि का चित्रण :

गोस्वामी तुलसीदास ने इसी परम्परा का अवलम्बन करते हुये 'रामचरितमानस' में मानवेतर प्राणि-सृष्टि का चित्रण इस प्रकार किया है-

1. बालकाण्ड :

गोस्वामीजी ने प्रारम्भ में जगत के सभी जड़ और चेतन जीवों को राममय जान कर कर-बद्ध होकर उनके चरण-कमलों की वन्दना की है। उन्होंने मनुष्यों के साथ ही देवता, दैत्य, नाग, पक्षी, प्रेत, पितर, गन्धर्व, किन्नर और निशाचर जैसे मानवेतर प्राणियों को प्रणाम करके उनसे कृपा करने की प्रार्थना की हैं :

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदऊँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि।। [1]

देव दनुज नर नाग खग प्रेत पितर गंधर्ब।
बंदऊँ किंनर रजनिचर कृपा करहु अब सर्ब।। [2]

तत्पश्चात् उन्होंने राक्षस-संस्कृति का वर्णन किया है। राक्षस मायावी, भयंकर, दुष्ट, हिंसक एवं निर्दयी थे। वे तपस्या से शक्ति प्राप्त करके उसका दुरुपयोग करते थे। वे प्रजा का भक्षण, देवताओं का धर्षण (तिरस्कार), ऋषियों के आश्रमों का विध्वंस तथा पराई स्त्रियों का बारम्बार हरण करते थे :

प्रजानां भक्षणं चापि देवानां चापि धर्षणम्।
आश्रमध्वंसनं चापि परस्त्रीहरणं भृशम्॥ [3]

रावण राक्षसों का अधिपति था। उसके दस सिर एवं बीस भुजायें थी। उसका छोटा भाई कुंभकर्ण एवं सौतेला भाई विभीषण था। इन्होंने कठोर तपस्या करके ब्रह्मा को प्रसन्न किया था। रावण ने ब्रह्मा से यह वर प्राप्त किया कि मनुष्य और बन्दर, इन दो जातियों को छोड़ कर वह अन्य किसी के हाथों नहीं मारा जायेगा। कुंभकर्ण ने छः मास की निद्रा का और विभीषण ने भगवान् की निष्काम भक्ति का वर प्राप्त किया।

रावण की शक्ति एवं पुरुषार्थ असीम था। उसने त्रिकूट पर्वत पर स्थित लंका से यक्षों को भगा कर वहाँ अपनी राजधानी स्थापित की और कुबेर से पुष्पक विमान छीन लिया। उसने मय दानव की पुत्री से विवाह किया। वह प्रचण्ड वीर था। उसने खेल-खेल में कैलास पर्वत को उठा लिया था। वह एक भयानक कामी राक्षस था, जिसने देवता, यक्ष, गन्धर्व, मनुष्य, किन्नर और नागों की सुन्दर स्त्रियों को बल से जीत कर उनसे विवाह किया था :

देव दच्छ गंधर्व नर किंनर नाग कुमारि।
जीति बरीं निज बाहुबल बहु सुन्दर बर नारि॥ [4]

वह देवताओं का परम शत्रु था। उसने सब राक्षसों को ब्राम्हण-भोजन, यज्ञ-हवन और श्राद्ध आदि क्रियाओं में बाधा डालने का आदेश दिया। उसने अपने जेष्ठ पुत्र मेघनाद को देवताओं पर आक्रमण करने के लिये उकसाया। वह मनुष्य, देवता, नाग किन्नर और सिद्ध, सब के पीछे पड़ कर उन्हें सताने लगा।

रावण की आज्ञा का अनुसरण करते हुये क्रोध और निर्दयता की मूर्ति ताड़का, जन्म, कर्म और स्वभाव से क्रोधी सुबाहु तथा मारीच विश्वामित्र के यज्ञ का विध्वंस करने लगे। लेकिन राम ने अपने अग्नि-बाणों से ताड़का और सुबाहु को ससैन्य मार गिराया और मारीच को बिना फल वाला बाण मार कर सौ योजन विस्तार वाले समुद्र के पार फेंक दिया। इस प्रकार पृथ्वी एवं देवताओं की प्रार्थना से द्रवित विष्णु ने राम के रूप में अवतार लेकर दानवों का दमन प्रारम्भ कर दिया।

गोस्वामीजी का उद्देश्य :

उपर्युक्त वर्णन द्वारा गोस्वामीजी यह बताना चाहते हैं कि तपस्या से अपरिमित शक्ति प्राप्त होती है, लेकिन जब शक्ति का दुरुपयोग प्रजा-उत्पीड़न में होने लगता है, तब उसके दमन के लिये दैविक शक्ति का प्रादुर्भाव होता है :

जब जब होइ धरम कै हानी।
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा।
हरहिं कृपानिधि सजन पीरा॥ 5

राक्षस शब्द का अर्थ बताते हुये गोस्वामीजी ने कहा है कि :

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा।
जे लंपट परधन परदारा॥
मानहिं मातु पिता नहि देवा।
साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी।
ते जानेहु निसिचर सब प्रानी॥ 6

उच्च कुल के जन्म से कोई महान् नहीं होता, व्यक्ति के कर्म ही उसे अच्छा या बुरा बनाते हैं। रावण तुलसी के समकालीन अन्यायी बादशाहों का प्रतीक हैं, जो प्रजा पर असीम अत्याचार करते थे। गोस्वामीजी ने उत्पीड़ित समाज को रामचरितमानस के द्वारा सान्त्वना दी कि देविक शक्ति उनके दुःखों का विमोचन करेगी।

इसप्रकार इस काण्ड में रावण, कुंभकर्ण, विभीषण, मेघनाद, ताड़का, सुबाहु एवं मारीच का चित्रण किया गया है।

2. अयोध्याकाण्ड :

गोस्वामीजी ने मानवेतर प्राणियों में जड़, चेतन, चर, अचर सब को समाहित कर लिया है। राम-वनगमन के अवसर पर वाटिका के वृक्ष और बेलें कुम्हलाने लग जाती हैं और नदी तथा तालाब भयानक दिखने लग जाते हैं।

बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं।
सरित सरोवर देखि न जाहीं॥ 7

राम के वियोग में घोड़े, हाथी, हरिण, गाय, बैल, बकरी, पपीहे, मोर, कोयल, चकवे, तोते, मैना, सारस, हंस और चकोर भी व्याकुल, चित्र लिखे-से खडे हैं:-

हय गय कोटिन्ह केलि मृग, पुरपसु चातक मोर।
पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर॥
राम बियोग बिकल सब ठाढ़े।
जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े॥ 8

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR

राम, लक्ष्मण, सीता को वन में पहुँचा कर जब व्यथित सुमन्त लौटने के लिये मुड़ते हैं तो घोड़े भी राम की ओर देख कर हिनहिनाते हैं मानों हिनहिनाकर वे अपना दु:ख व्यक्त कर रहे हों:-

रथु हाँकेउ हय राम तन हेरि हेरि हिहिनाहिं।
देखि निषाद बिषाद बस धुनहिं सीस पछिताहिं॥ 9

राम जब केवट से गंगा पार उतारने की प्रार्थना करते हैं, तब उनके पद -नखों (अपने उत्पत्ति के स्थान) को देख कर गंगा हर्षित हो जाती है और श्री राम के चरण-स्पर्श का मोह उसके मन में उत्पन्न होता है:-

पद नख निरखि देवसरि हरषी।
सुनि प्रभु बचन मोहँ मति करषी॥ 10

गंगा पार जाकर जब सीता गंगा से अपना मनोरथ पूर्ण करने की प्रार्थना करती है, तब गंगा के निर्मल जल से आशीर्वादात्मक वाणी प्रस्फुटित होती है:-

प्राणनाथ देवर सहित, कुसल कोसला आइ।
पुजिहि सब मनकामना सुजसु रहिहि जग छाइ॥ 11

राम, लक्ष्मण और सीता को तपस्वी वेश में वन में प्रवेश करते देख कर पशु-पक्षी प्रेमानन्द में मग्न हो जाते हैं और अपने चित्त में राम की छबि को अंकित करने लगते हैं:-

खग मृग मगन देखि छबि होहीं।
लिए चोरि चित राम बटोहीं॥ 12

चित्रकूट में देवता, नाग, किन्नर और दिग्पाल आते हैं और राम उन सब को प्रणाम करते हैं:-

अमर नाग किंनर दिसिपाला।
चित्रकूट आए तेहि काला॥ 13

चित्रकूट में हाथी, सिंह, बन्दर, सूअर और हरिण ये सब आपसी वेर-भाव छोड़ कर साथ-साथ विचरते हैं और राम की छवि को देखकर आनन्दित होते है:-

करि केहरि कपि कोल कुरंगा।
बिगत बैर बिचरहिं सब संगा॥
फिरत अहेर राम छबि देखी।
होहिं मुदित मृग बृंद बिसेषी॥ 14

मंत्री सुमन्त के घोड़े दक्षिण दिशा की ओर, जिधर राम गये हैं, देख देख कर हिनहिनाते है। वे न तो घास चरते हैं, न पानी पीते हैं, केवल नेत्रों से जल बहा रहे हैं:-

देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं।
जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं॥ 15

नहि तृन चरहिं न पिअहिं जलु मोचहिं लोचन बारि।
ब्याकुल भए निषाद भए सब रघुबर बाजि निहारि॥ 16

राम से मिलने के लिये जाते हुए भरत मार्ग में त्रिवेणी - संगम में स्नानादि करते हैं और राम के चरणों मे प्रेम का वरदान माँगते हैं। तीर्थराज प्रयाग उन्हे हर्षित होकर आशीर्वाद देते हैः-

तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू।
राम चरन अनुराग अगाधू॥
बादि गलानि करहु मन माहीं।
तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाहीं॥ 17

भरद्वाज मुनि जब भरत के प्रेम की प्रशंसा करते हैं तब आकाश और प्रयागराज मे धन्य, धन्य की ध्वनि सुनाई देती है। भरत की प्रेमदशा को देख कर वन के पशु, पक्षी और जड़ (वृक्षादि) जीव प्रेम में मग्न हो जाते हैं:-

देखि भरत गति अकथ अतीवा।
प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा॥ 18

राजा जनक के समाज - सहित आगमन पर दोनों राज - समाज शोक से व्याकुल हो जाते हैं। उस दिन भोजन की बात तो दूर रही, कोई जल तक नहीं पीता। पशु, पक्षी और हरिण भी आहार नही करते हैं:-

पसु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू।
प्रिय परिजन कर कौन बिचारू॥ 19

चित्रकूट में राम समाज - सहित वन - भ्रमण के लिये पैदल ही निकलते हैं। उनके कोमल चरणों को पाद-त्राण-विहीन देख कर पृथ्वी सकुचा कर कोमल हो जाती है और कुश, काँटे, कंकड़, दरारें आदि कठोर वस्तुओं को छिपा कर मार्ग को कोमल बना देती है।

अवधवासी लोग जब चित्रकूट से लौटने लगते हैं, तो बैल, घोड़े, हाथी आदि पशु राम के वियोग से बहुत दुःखी हो जाते हैं। उस समय पशु, पक्षी, मछलियाँ और चित्रकूट के सभी जड़ चेतन जीव उदास हो जाते हैः-

तेहि अवसर खग मृग जल मीना।
चित्रकूट चर अचर मलीना॥ [20]

गोस्वामीजी का उद्देश्य :

गोस्वामीजी ने प्रकृति के विभिन्न उपादानों में मानवता का दर्शन किया है। उनके अनुसार प्रकृति की सार्थकता उसके अस्तित्व मात्र में ही नहीं है। अतः उन्होंने प्रकृति को गोचर की सीमा में न बाँध कर उससे आत्मीयता स्थापित करने का सफल प्रयास किया है। उन्होने प्रकृति की मानव के सुख मे सुखी एवं दुःख में दुःखी होने की भावानुकूल भाषा को समझा है, इसीलिये राम - वनगमन के अवसर पर वृक्ष और बेलें कुम्हलाने लगती हैं, नदी और तालाब भयानक लगने लगते हैं और पशु - पक्षी व्याकुल हो जाते हैं। गंगा के निर्मल जल से आशीर्वादात्मक वाणी प्रस्फुटित होती है और आकाश तथा प्रयागराज में धन्य, धन्य की ध्वनि सुनाई देती हैं।

गोस्वामीजीने प्रकृति को भावुकता की कसोटी पर कसा है। उनका कवि-हृदय प्रकृति के सुरम्य राग से स्पन्दित हुआ है। उन्होंने हमारा ध्यान विश्व में व्याप्त चेतना की ओर आकर्षित किया है। इस प्रकार गोस्वामीजी ने इस काण्ड में पशु, पक्षी, वृक्ष, लता, नदी, तालाब, देवता, नाग, किन्नर, दिग्पाल, पृथ्वी एवं तीर्थराज प्रयाग का चित्रण किया है।

3. अरण्यकाण्ड :

एक बार जब सीता चित्रकूट में बैठीं हुई थी, तब इन्द्र का पुत्र जयन्त कौए का रूप धारण कर उनके चरणों में चोंच मार कर भाग जाता है। वह मन्दबुध्दि है और राम के बल की परीक्षा लेना चाहता है। राम धनुष पर सींक का बाण संधान करते हैं। अन्त में वह राम की शरण में आकर क्षमा-याचना करता है। राम उसे 'एक नयन' (काना) कर छोड़ देते हैं।

राम, लक्ष्मण और सीता जब अत्रि मुनि के आश्रम से आगे बन की ओर बढते हैं, तो मार्ग में बिराध नामक राक्षस मिलता हैं। राम उसे मार कर परमधाम भेज देते हैं। मुनियों को खाकर राक्षसों ने उनकी हड्डियों को इधर - उधर फेंक दिया था। मार्ग में उन हड्डियों के ढ़ेरों को देखकर राम पृथ्वी को राक्षस - विहीन करने की प्रतिज्ञा करते हैंः-

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाई जाई सुख दीन्ह।। 21

पंचवटी के निकट गृध्रराज जटायु से राम की भेंट होती है। वे पंचवटी में गोदावरी के तट पर अपनी कुटिया बना लेते हैं।

एक बार रावण की बहन शूर्पणखा पंचवटी में आती है और दोनों राजकुमारों के सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाती है। वह राम से प्रणय - याचना करती है; लेकिन वे लक्ष्मण को कुमार बता कर उनके पास भेज देते हैं। लक्ष्मण अपने आप को राम का दास एवं पराधीन बता कर राम के पास भेज देते हैं। अन्त में वह निराश एवं हताश हो कर अपना भयंकर रूप प्रकट करती है। तब लक्ष्मण उसे नाक - कान विहीन कर देते हैं।

शूर्पणखा विलाप करती हुई खर-दूषण के पास जाती है और उनकी वीरता को धिक्कारती है। खर-दूषण - त्रिशिरा राम पर आक्रमण करते हैं; लेकिन वे ससैन्य उनके हाथों मारे जाते हैं। अत: शूर्पणखा रावण के पास जाकर उसे युध्द के लिए उकसाती है।

रावण नम्रता के साथ मारीच के पास पहुँच कर उसे कपट - मृग बनने के लिये समझाता है। मारीच राम के बल से परिचित है। इसलिये वह आनाकानी करता है। लेकिन रावण के भय के कारण तैयार हो जाता है। वह राम के हाथों मारा जाता है। रावण पंचवटी की कुटी में सीता को अकेली देख कर, उसे रथ पर बैठा कर आकाश-मार्ग से लंका की ओर चल पड़ता है। असहाय सीता विलाप करने लगती है।

गृध्रराज जटायु सीता की दु:ख भरी वाणी सुन कर पहाचन लेता है कि यह राम की पत्नी हैं। वह वज्र की तरह रावण पर झपटता है और उसे जमीन पर पछाड़ देता है। वह अपनी तीक्ष्ण चोंच से रावण के शरीर को विदीर्ण कर देता है। अन्त में रावण अपनी भयानक कटार निकाल कर जटायु के पंख काट डालता है और लंका की ओर चला जाता हैं। मार्ग में, पर्वत पर बैठे बन्दरों को देख कर सीता हरिनाम लेकर अपनी पहचान के लिये वस्त्र नीचे फेंक देती हैं। रावण सीता को लंका में अशोक वन में रखता है।

सीता - हरण से व्याकुल - व्यथित राम विलाप करते हुये, पक्षियों, पशुओं और भौरों की पँक्तियों से सीता का अता - पता पूछते हैं:-

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी।
तुम्ह देखी सीता मृगनैनी।। 22

मार्ग में राम को गृध्रराज जटायु घायलावस्था में दिखाई देते हैं। वे सीता का पता बताते हैं और अखण्ड भक्ति का वरदान माँग कर परमधाम सिधार जाते हैं। राम उनकी दाह - कर्म आदि सारी क्रियाये अपने हाथों करते हैं:-

अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया जथोच्चित निज कर कीन्ही राम॥ 23

मार्ग में राम कबंध राक्षस को मारते हैं और शबरी के आश्रम में आते हैं।

गोस्वामीजी का उददेश्य :

जयन्त की कथा का आशय यह है कि प्रभुता - सम्पन्न पिता की सन्तान अहंकारवश कोई भी दुस्साहसिक कार्य कर बैठती है। लेकिन कभी कभी ऐसे व्यक्ति को उनके कुकृत्य का फल भुगतना पड़ता है। ऐसे राम के द्रोही को कोई शरण नहीं देता, अन्त में उन्हे राम की ही शरण लेनी पड़ती है:-

काहूँ बैठन कहा न ओही।
राखि को सकइ राम कर द्रोही॥ 24

शूर्पणखा विलासिता का प्रतीक है। जन-जीवन में विलासिता मनमोहक रूप धारण करके प्रवेश करती है; लेकिन चारित्रिक दृढता से उसका दमन किया जा सकता है। यह आदर्श सामान्य जन के लिये कठिन है; लेकिन जिसे कामी रावण का वध करना है उसके लिये अत्यावश्यक है।

राक्षस सर्वहितैषी ऋषि-मुनियों का भक्षण एवं यज्ञों का विध्वंस करते हैं। वास्तव में इस प्रकार के दुष्कृत्यों में रत व्यक्ति ही राक्षस है। राक्षस कामी भी है। खरदूषण भी जानकी की माँग करते है:-

देहु तुरत निज नारि दुराई।
जीअत भवन जाहु द्वौ भाई॥ 25

राम कृपालु हैं। वे विराध एवं मारीच को भी परमगति प्रदान करते हैं। राक्षस राम-राम कह कर शरीर त्यागते हैं और मोक्षप्रद प्राप्त करते हैं।

कुमार्ग पर पैर रखते ही शरीर के तेज, बुध्दि एवं बल का नाश होता है। सीता-हरण के समय रावण की स्थिति से उसका पता चलता है:-

इमि कुपंथ पग देत खगेसा।
रह न तेज तन बुधि बल लेसा॥ 26

गृध्रराज जटायु के प्रसंग में गोस्वामीजी का कथन है कि जिसके हृदय में परमार्थ

की भावना रहती है उसके लिये संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है:-

परहित बस जिन्ह के मन माहीं।
तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥ 27

इसी परमार्थ - भावना के कारण राम ने पक्षियों में अधम और माँसाहारी गिध्द को भी वह दुर्लभ सद्गति दी, जिसकी याचना योगीजन करते हैं।

इस प्रकार गोस्वामीजी ने इस काण्ड में जयन्त, बिराध, जटायु, शूर्पणखा, खर, दूषण, त्रिशिरा, रावण, मारीच, खग, मृग, भ्रमर आदि का चित्रण किया है।

4. किष्किन्धाकाण्ड :

राम, लक्ष्मण और सीता दक्षिण की ओर बढ़ते हुये ऋष्यमूक पर्वत के निकट आते हैं, जहाँ मन्त्रियों सहित सुग्रीव निवास करते हैं। राम - लक्ष्मण को उधर आते हुये देख कर सुग्रीव सशंकित हो जाते हैं कि कहीं बालि ने तो उन्हें नहीं भेजा है। अत: वे अपने मंत्री हनुमान को ब्रह्मचारी के वेश में उनका यथार्थ परिचय प्राप्त करने के लिये भेजते हैं। हनुमान प्रभु राम को पहचान लेते हैं और राम की सुग्रीव से अग्नि को साक्षी देकर मित्रता करा देते हैं। सुग्रीव राम को सीता की खोज कराने का आश्वासन देते हैं।

सुग्रीव राम को अपनी करुण - कहानी सुनाते हैं कि किस प्रकार उसके जेष्ठ भ्राता बलाढ्य बालि ने उसका सर्वस्व एवं पत्नी को छीन किया है। दु:खी, उत्पीड़ित सुग्रीव को राम अपना सखा बना लेते हैं और एक ही बाण से बालि के वध का आश्वासन देते हैं।

राम का बल पाकर सुग्रीव बालि को द्वन्द्व के लिये ललकारता है। बालि की पत्नी तारा बालि को, राम के सामर्थ्य के बारे में बताती है। बालि तारा से कहते हैं कि राम तो समदर्शी हैं। अगर वे राम के हाथों मारे भी गये, तो उन्हें परमपद की प्राप्ति होगी। फिर बालि सुग्रीव को द्वन्द्व - युध्द में परास्त कर देते हैं। सुग्रीव प्राण बचा कर भागता है।

सुग्रीव राम की प्रेरणा से पुन: बालि से द्वन्द्व करता है और राम पेड़ की ओट से बाण मार कर बालि को घायल कर देते हैं। मरणासन्न बालि राम को अपने सामने देख कर, हृदय में प्रेम रखते हुये भी कठोर वचन कहता है। छिप कर व्याध की तरह बाण मारने का वह कारण पूछता है। राम उसे समझाते हैं। वह राम के वचनों पर श्रद्धा, भक्ति और विश्वास रखते हुये, जन्म - जन्मान्तर के लिये उनके

चरणों में प्रेम का वर माँग कर, अंगद को राम के सुपुर्द कर परमगति प्राप्त करता है। लक्ष्मण सुग्रीव को किष्किन्धा का राज्य एवं अंगद को युवराज - पद दे देते हैं।

वर्षा ऋतु का आगमन हो जाता है। राम प्रवर्षण पर्वत पर निवास करते हैं एवं सुग्रीव अपने भवन लौट जाते हैं।

स्वकार्य सिध्द हो जाने पर सुग्रीव राज्य - भोगादि में लिप्त हो जाते हैं और उन्हे सीता के अन्वेषण का स्मरण नहीं रहता। अतः राम लक्ष्मण को सुग्रीव के पास भेजते हैं। राम की शक्ति का स्मरण कर सुग्रीव भयभीत हो कर राम के पास आते हैं। वे वानर - समूहों को चारों दिशाओं में भेजते हैं और एक मास की अवधि में सीता की खोज का आदेश देते हैं। अंगद, हनुमान, जामवन्त, नल, नील आदि प्रधान योध्दा दक्षिण दिशा की ओर प्रयाण करते हैं। राम अपनी पहचान के लिये हनुमान को अपनी मुद्रिका प्रदान करते हैं।

वानर वीर वन, नदी, तालाब और पर्वतों की कन्दराओं में खोजते हुये दक्षिण की ओर चले जा रहे हैं; लेकिन सीता का पता नहीं चलता। अन्त में वे थकित, व्यथित और हतोत्साहित होकर लवण सागर के तट पर कुश बिछा कर बैठ जाते हैं। जामवन्त निराश अंगद को सान्त्वना देते हैं।

इनके वार्त्तालाप को पर्वत की कन्दरा में बैठा हुआ सम्पाति सुनता है। वह बाहर निकल कर बन्दरों को खाने का निश्चय करता है जिससे बन्दर भयभीत हो जाते हैं। लेकिन उन्हें अपने भ्राता जटायु से परिचित जानकर सम्पाति अभयदान दे देता है। वह अपनी तीव्र दृष्टि से देख कर बताता है कि सीता लंका में अशोक - वाटिका में चिन्ताग्रस्त बैठी है। जो बुध्दिमान है और सौ योजन समुद्र लाँघ सकता है वही सीतान्वेषण का कार्य कर सकेगा।

ऋक्षराज जामवन्त अपनी वृध्दावस्था के कारण समुद्र लाँघ सकने में अपनी असमर्थता व्यक्त करते हैं। अंगद समुद्र पार जा तो सकते हैं, लेकिन वापिस लौटने में उन्हें सन्देह हैं। अन्त में जामवन्त हनुमान को उनके बल का स्मरण कराते हैं। तब हनुमान सीता की सुधि लाने के लिये कटिबध्द हो जाते हैं।

गोस्वामीजी का उददेश्य :

गोस्वामीजी राम एवं हनुमान के मिलन के प्रसंग में दास्य-भाव की भक्ति का प्रतिपादन करते हैं। राम हनुमान से कहते हैं मुझे सेवक प्रिय हैं:-

समदरसी मोहि कह सब कोऊ।
सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ॥ [28]

गोस्वामीजी राम और सुग्रीव की मित्रता के अवसर पर मित्रता के लक्षणों का वर्णन करते हैं। उनके अनुसार, ऐसे लोगों को देखने से ही पाप लगता हैं, जो मित्र के दु:ख से दुखी नही होतेः-

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी।
तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥ [29]

तुलसीदासजी का विश्वास है कि सामाजिक सुव्यवस्था के लिये सच्चरित्रता आवश्यक है। राम स्वयं भी एक पत्नीव्रत के पालक है। बालि - वध के समय राम कहते हैं कि छोटे भाई की पत्नी, बहन, पुत्र-वधू और कन्या, ये चारों समान हैं। इनको जो कोई बुरी दृष्टि से देखता है, उसे मारने में कुछ पाप नहीं होताः-

अनुज बधू भगिनी सुत नारी।
सुनु सठ कन्या सम ए चारी॥
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकई जोई।
ताहि बधें कछु पाप न होई॥ [30]

गोस्वामीजी की इस विचार धारा पर 'वाल्मीकीय रामायण' के निम्न श्लोक का प्रभाव दृष्टव्य हैः-

औरसीं भगिनीं वापि भार्यां वाप्युनुजस्य यः।
प्रचरेत नरः कामात् तस्य दण्डो वधः स्मृतः॥ [31]

अर्थात् जो पुरुष अपनी कन्या, बहन अथवा छोटे भाई की स्त्री के पास काम-बुध्दि से जाता है उसका वध करना ही उसके लिये उपयुक्त दण्ड माना गया है।

ऐश्वर्य प्राप्त कर सुग्रीव राम का कार्य भूल जाता है। तुलसीदासजी बताना चाहते है कि भोगों में लिप्त व्यक्ति अपने कर्तव्य से च्युत हो जाता है। देवता, मनुष्य और मुनि, सभी विषयों के वश में हेः-

विषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी।
मैं पावँर पसु कपि अति कामी॥ [32]

फिर भी संयमी ही श्रेष्ठ होता है एवं जीवन में वही सफल बनता है।

संपाति - प्रसंग में राम-कृपा का चमत्कार बताया गया है। संपाति पँख - विहीन होने के कारण व्यथित था; लेकिन राम-कृपा से उसके पँख उग आते हैं और शरीर सुन्दर हो जाता हैः-

मोहि बिलोकि धरहु मन धीरा ।
राम कृपाँ कस भयउ शरीरा॥

तुलसीदास बताना चाहते हैं कि भगवद् कृपा से क्या संभव नहीं होता ?

इस प्रकार गोस्वामीजी ने इस काण्ड में हनुमान, सुग्रीव, बालि, तारा, अंगद, जामवन्त, नल, नील एवं सम्पाति का चित्रण किया है।

5. सुन्दरकाण्ड :

समुद्र के तीर पर एक सुन्दर पर्वत था, जिस पर हनुमान सहज ही कूद कर चढ़ जाते हैं और श्रीरघुवीर का स्मरण करके आकाश-मार्ग से लंका की ओर प्रयाण करते हैं। समुद्र हनुमान को राम का दूत समझ कर मैनाक पर्वत से उन्हें विश्राम देने के लिये कहता है। हनुमान मैनाक पर्वत को प्रणाम कर राम-कार्य के लिये आगे बढ जाते हैं।

हनुमान की बल-बुध्दि की परीक्षा के लिये देवता सुरसा नामक सर्पो की माता को भेजते हैं। वह हनुमान का भक्षण करने के लिये अपने मुँह का विस्तार सौ योजन तक का कर लेती है; लेकिन हनुमान अति लघुरूप धारण कर चले जाते हैं। सुरसा को हनुमान के बल-बुध्दि का विश्वास हो जाता है और वह उन्हें सीता की खोज के लिये सर्वथा उपयुक्त समझती है।

मार्ग में हनुमान उस राक्षसी का हनन कर देते हैं, जो आकाश में उड़ने वाले जीवों की परछाई पकड़ कर उन्हें खा जाती थी। हनुमान समुद्र पार कर एक पर्वत पर चढ कर सुन्दर लंकानगरी को देखते हैं।

हनुमान अति लघु रूप धारण करके रात के समय लंका में प्रवेश करते हैं। लंका की रक्षिका लंकिनी हनुमान को रोकती है, लेकिन उनके एक ही मुष्टि-प्रहार से वह धराशायी हो जाती है।

हनुमान ने लंका के प्रत्येक महल में सीता की खोज की। वे रावण के महल में भी गये; लेकिन उन्हें सीता दिखाई नहीं दी। तभी उन्हें रामायुध (धनुष-बाण) से अंकित एवं तुलसी के वृक्ष-समूह से सुशोभित विभीषण का भवन दिखाई दिया।

विभीषण हनुमान से मिल कर एवं उन्हें राम-भक्त जान कर प्रसन्न होते हैं। वे हनुमान को अशोक वाटिका का मार्ग बताते हैं, जहाँ रावण ने सीता को रखा है। हनुमान अशोक वाटिका में जाकर वृक्ष के पत्तों में छिप जातें हैं। तभी रावण मन्दोदरी आदि रानियों के साथ वहाँ आता है। सीता तिनके की ओट से रावण से

बात करके लंकाधिप के महान ऐश्वर्य को तिनके की ही तरह तुच्छ बना देती है और हनुमान उस सतीत्व की महिमा के प्रति पूर्ण नत होकर उनके सम्मुख राम-नाम से अंकित मुद्रिका डाल देते हैं। सीता के सम्मुख प्रकट हो कर वे अपना परिचय देते हैं। वे रावण-सहित राक्षसों को मारने की राम की शक्ति का विश्वास दिला कर अपनी शक्ति का भी उल्लेख करते हैं; लेकिन सीता को विश्वास नहीं होता कि लंकापति की दानवी शक्ति को भेद कर ये छोटे-छोटे बन्दर उन तक आ सकेंगे। तब हनुमान अपने 'कनक भूधराकार शरीर' को प्रकट कर सीता को आश्वस्त करते हैं।

हनुमान अपनी शक्ति का प्रत्यक्ष परिचय देने के लिये क्षुधा-शमन का कारण बता कर सीता से फल खाने की आज्ञा प्राप्त कर लेते हैं और अशोक वाटिका का विध्वंस करते हैं। वे अक्षयकुमार को उसकी सेना सहित मार डालते हैं। इस प्रकार राक्षसों की 'भट', 'सुभट' आदि श्रेणियों के परास्त होजाने पर रावण 'महाभटों' के साथ 'दारुण भट' मेघनाद को भेजता है। ब्रह्मास्त्र से मूर्छित कर वह हनुमान को नागपाश में बाँध लेता है।

हनुमान को रावण के दरबार में प्रस्तुत किया जाता है। वे रावण को उसकी न्यूनतायें बताकर उसकी निन्दा करते हैं। सीता को राम के अधीन कर उनके भक्त बनने का वे सुझाव भी देते हैं। रावण क्रोधित होकर हनुमान की पूँछ में आग लगाने का आदेश देता है। हनुमान विभीषण के भवन को छोड कर सम्पूर्ण लंका को जला देते हैं। फिर वे अपनी पूँछ को समुद्र में बुझा कर, सीता से चूड़ामणि प्राप्त कर, समुद्र पार कर अपने साथियों से आ मिलते हैं।

जामवन्त हनुमान की प्रशंसा करते हैं और राम हनुमान को हृदय से लगा लेते हैं। हनुमान सीता का सन्देश सुनाते हैं एवं उनके वियोग का हृदय-विदारक वर्णन करते हैं। व्यथित होकर राम वानरों की सेना सहित समुद्र तट पर आ जाते हैं।

उधर लंका में राक्षस अपने कुल की रक्षा के लिये चिन्तित रहने लगते हैं। मन्दोदरी रावण को हरि का विरोध छोड़ने एवं सीता को लौटाने की प्रार्थना करती है; लेकिन अभिमानी रावण उसे डरपोक मान कर उसका सुझाव अमान्य कर देता है। राजसभा में विभीषण भी रावण को यही परामर्श देते हैं। रावण के बुद्धिमान मंत्री माल्यवान भी उनके विचारों का समर्थन करते हैं। रावण क्रोधित होकर विभीषण को धिक्कारते हुये, लात मार कर अपनी सभा से निकाल देता है और कुत्सित भाव से राम से जा मिलने की आज्ञा देता है। विभीषण राम की शरण में आ जाते हैं। राम उन्हें लंका का राजतिलक करके लंकेश की उपाधि दे देते हैं।

राम अपनी रीछ एवं वानरों की सेना को समुद्र से पार जाने के लिये मार्ग देने की प्रार्थना करते हैं। तीन दिन बीत जाते हैं; लेकिन समुद्र उनकी विनय नहीं मानता। राम भयानक अग्निबाण का सन्धान करते हैं। तब भयभीत समुद्र राम की शरण में आकर क्षमा याचना करता है। समुद्र राम को सेतुबन्ध कर सेना-सहित लंका में पहुँचने का सुझाव देता है। वह पूर्ण सहयोग का आश्वासन देकर, राम के चरणों की वन्दना करता है।

गोस्वामीजी का उद्देश्य :

सुन्दरकाण्ड की समुद्र-संतरण, सीता से भेंट, लंका-दहन आदि घटनाओं के प्रमुख पात्र हनुमान हैं। हनुमान अपने तेजस्वी स्वरूप के कारण 'सुन्दर' नाम से अभिहित किये गये हैं। प्रसिद्ध जैन कवि स्वयंभू की अपभ्रंश भाषा में रचित रामायण 'पउमचरिउ' में कहा गया है कि हनुमान का वास्तविक नाम सुन्दर था परन्तु इन्द्र के आघात से उनकी हनु (ठोढ़ी) आगे निकल आई तब से उन्हें हनुमान कहा जाने लगा। इसी 'सुन्दर' नाम के आधार पर इस काण्ड का नाम सुन्दरकाण्ड रखा गया है।

गोस्वामीजी ने जीवन की पवित्रता के लिये सज्जनों की संगति को सर्वश्रेष्ठ माना है। लंकिनी के प्रसंग में सत्संग की महिमा का वर्णन करते हुये वे कहते हैं कि स्वर्ग और मोक्ष के सम्पूर्ण सुख भी क्षण मात्र के सत्संग की बराबरी नहीं कर सकते:-

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख, धरिअ तुला एक अंग।
तुल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग॥ [33]

गोस्वामीजी ने हनुमान को प्रभु-सेवा के कारण देवत्व प्रदान किया है। सीता की खोज के लिये हनुमान जिस-जिस महल में प्रवेश करते हैं, गोस्वामीजी उसे 'मन्दिर' नाम से सम्बोधित करते हैं:

मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा।
देखे जहँ तहँ अगनित जोधा॥
गयउ दसासन मंदिर माहीं।
अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं॥ [34]

सयन किएँ देखा कपि तेही।
मंदिर महुँ न दीखि बैदेही॥ [35]

वे रावण के महल को भी 'मन्दिर' कहते हैं, क्योंकि देवता-स्वरूप हनुमान ने उसमें प्रवेश किया है। लेकिन विभीषण के महल के लिए उन्होंने 'भवन' शब्द का

प्रयोग किया है, क्योंकि हनुमान बाहर से ही उसे देखते हैं:

भवन एक पुनि दीख सुहावा।
हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा॥ 36

गोस्वामीजी विभीषण के रूप में एक सच्चे वैष्णव के जीवन का परिचय देते हैं। उनके महल में भगवान का अलग मन्दिर है। महल पर रामायुध (धनुष-बाण) का चिन्ह अंकित है, आसपास तुलसी के वृक्ष-समूह लगे हुये हैं। जग कर उठते ही विभीषण राम नाम का स्मरण (उच्चारण) करते हैं:

रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृन्द तहँ, देखि हरष कपिराइ॥ 37

राम राम तेहि सुमिरन कीन्हा।
हृदय हरष कपि सज्जन चीन्हा॥ 38

हनुमान एवं विभीषण के मिलन-प्रसंग में गोस्वामीजी दास्य-भाव की भक्ति का प्रतिपादन करते हैं। हनुमान कहते हैं कि प्रभु की यही रीति है कि वे सेवक पर सदा ही प्रेम किया करते हैं:

सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीति।
करहिं सदा सेवक पर प्रीती॥ 39

समुद्र के प्रसंग के अन्तर्गत एक अर्धाली का प्रयोग हुआ हैं जिसके आधार पर कुछ विद्वान् गोस्वामीजी को नारी के प्रति अनुदार मानते हैं:

ढ़ोल गवाँर सूद्र पसु नारी।
सकल ताड़ना के अधिकारी॥ 40

यह अर्धाली 'गर्ग-संहिता' के निम्न श्लोक का अविकल अनुवाद है, जिसे अपराधी पात्र समुद्र अपनी क्षुद्रता तथा गँवारपन के पश्चाताप के रूप में प्रकट करता है:

दुर्जनाः शिल्पिनो दासा दुष्टश्च पटहाः स्त्रियः।
ताडिता मार्दवं यान्ति न ते सत्कारभाजनम्॥

समुद्र आदर्श पात्रों की कोटि में नहीं आता। अतः उसका कथन 'सिध्दान्त वाक्य' नहीं माना जा सकता। गोस्वामीजी समुद्र के लिये जड़ शब्द का प्रयोग करते हैं:

बिनय न मानत जलधि जड़, गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होइ न प्रीती॥ 41

'अध्यात्म रामायण' में भी समुद्र को दुष्टात्मा कहा गया है :

पश्य लक्ष्मण दुष्टोऽसौ वारिधिर्मामुपागतम्।
नाभिनन्दति दुष्टात्मा दर्शनार्थं ममानघ॥ [42]

जिस प्रकार महाकवि मिल्टन का 'शैतान' ईश्वर की निन्दा करता है, लेकिन वह आदर्श पात्र न होने से मिल्टन के विचारों का प्रतिनिधित्व नहीं करता। उसी प्रकार जड़ समुद्र भी गोस्वामीजी के विचारों का प्रतिनिधित्व नहीं करता है। अतः उक्त उक्ति गोस्वामीजी की नहीं; बल्कि खल पात्र समुद्र की ही समझनी चाहिये।

इस प्रकार गोस्वामीजी ने इस काण्ड में मैनाक, सुरसा, लंकिनी, विभीषण, मन्दोदरी, रावण, मेघनाद एवं समुद्र का चित्रण किया है।

6. लंकाकाण्ड :

नल और नील, वानरों द्वारा लाये हुये बड़े-बड़े पर्वतों एवं वृक्षों से सुन्दर सेतु की रचना करते हैं। जब राम वानरों की सेना सहित समुद्र पार करने लगते हैं तब घड़ियाल, मच्छ और सर्प जैसे जलचर प्राणी उन्हें देखकर हर्षित होते हैं।

समुद्र पर सेतु के बाँधे जाने का समाचार सुन कर रावण घबरा जाता है। मन्दोदरी एवं उसका पुत्र प्रहस्त उसे राम का विरोध छोड कर जानकी को लौटाने का परामर्श देते हैं; लेकिन वह उनके सुझावों की उपेक्षा करता है।

इधर जामवन्त के सुझावानुसार राम अंगद को अपना दूत बना कर लंका में भेजते हैं।। लंका में प्रवेश करते ही अंगद की मुठभेड़ रावण के पुत्र से होती है। अंगद उसका पेर पकड कर उसे भूमि पर पछाड देता है, जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है। धीर, वीर एवं बल की राशि अंगद, सिंह की शान से रावण की राजसभा में प्रवेश करते हैं और सब के मन में भय-मिश्रित आदरभाव का निर्माण कर लेते हैं। वे बालि, सहस्त्रार्जुन एवं बलि के इतिहास का वर्णन करते हैं जिनसे रावण की पराजय एवं दुर्गति का सम्बन्ध है। अंगद सीता को आदरपूर्वक आगे करके राम की शरण में आने का रावण को परामर्श देते हैं। अन्त में, अंगद अपने पैर को दृढ़ता से पृथ्वी पर स्थापित करते हैं, जिसे राजसभा का कोई भी वीर हिला या हटा नहीं सका। तब रावण उनके पैर को हटाने के लिये ज्यों ही झुकता है त्यों ही अंगद अपने पैर को स्वयं हटा कर उससे कहते है कि राम के चरण पकड़ने से ही उसका कल्याण होगा। इस प्रकार अंगद अपनी शक्ति एवं चातुर्य से रावण को निस्तेज कर राम की सेवा में लौट आते हैं।

राम अपनी वानर-भालुओं की सेना लेकर लंका पर आक्रमण कर देते हैं। भयंकर युद्ध होता है और रावण की आधी सेना नष्ट हो जाती है। रावण अपने मंत्रियों से विचार-विमर्श करता है। रावण का नाना एवं श्रेष्ठ मंत्री माल्यवन्त रावण को नीति के वचन कह कर समझाता है लेकिन रावण उसकी भर्त्सना कर उसे राजसभा से निकाल देता है। मेघनाद अपने बल-पौरुष से करामात दिखाने की प्रतिज्ञा करके रावण के मन में विश्वास का निर्माण करता है। युध्द-भूमि में मेघनाद राम, लक्ष्मण, नल, नील, सुग्रीव, अंगद, हनुमान विभीषण आदि सभी वीरों को ललकारता है। वह वीरघातिनी शक्ति का प्रयोग करके लक्ष्मण को मूर्च्छित कर देता है।

सुषेण के निर्देशानुसार हनुमान संजीवनी बूटी प्राप्त करने के लिये निकल पड़ते हैं और मार्ग में कपट-मुनि कालनेमि को पछाड़ कर देवलोक भेज देते हैं। पर्वत पर ओषधि को न पहचानने के कारण हनुमान समूचा पर्वत ही उखाड़ लाते हैं। वैद्य सुषेण के उपचार से लक्ष्मण सचेत होकर उठ बैठते हैं।

यह समाचार पाकर रावण विषाद से भर जाता है और व्याकुल हो कर कुंभकर्ण को जगाता है। वह उसे अब तक की सारी घटनाओं का वर्णन करके बताता है कि दुर्मुख, देवान्तक, नरान्तक, अतिकाय, अकम्पन तथा महोदर आदि सभी वीर रण भूमि में खेत रहे हैं। तब कुंभकर्ण रावण से कहता है कि जानकी का हरण करके उसने अच्छा नहीं किया है। अभिमान छोड कर श्रीराम को भजने का वह उसे परामर्श देता है। बाद में वह करोड़ों घड़े मदिरा पीकर और अनेक भैंसे खा कर गरजते हुये अकेला ही युध्द के लिये निकल पडता है। वह हनुमान को पृथ्वी पर गिरा देता है एवं नल-नील आदि योध्दाओं को भी परास्त कर देता है। वह सुग्रीव समेत अंगद आदि वीरों को मूर्च्छित करके वानरराज सुग्रीव को अपनी काँख में दबा लेता है। अन्त में वह राम के हाथों मारा जाता है और उसके शरीर से निकला हुआ तेज राम के मुख में समा जाता है।

मेघनाद अपने मायामय रथ पर चढ कर रणभूमि में जाता है और बाणों की वर्षा कर लक्ष्मण, हनुमान, अंगद, नल, नील, सुग्रीव विभीषण आदि सभी वीरों को घायल कर देता है। उसके प्रचण्ड बाण राम सहित सभी वीरों को नागपाश में बाँध लेते हैं। तब देवर्षि नारद द्वारा भेजे हुये पक्षीराज गरूड़ वहाँ आकर सभी को नागपाश से मुक्त करते हैं।

मेघनाद स्वयं को अजेय बनाने हेतु पर्वत की एक गुफा में जाकर एक विशेष यज्ञ का आयोजन करता है; लेकिन लक्ष्मण अपने श्रेष्ठ योध्दाओं सहित वहाँ जाकर उसके यज्ञ में विघ्न डालते हैं। क्रोधित मेघनाद त्रिशूल लेकर दौड़ता है और अंगद

तथा हनुमान की छाती में त्रिशूल मार कर दोनों वीरों को पृथ्वी पर गिरा देता है। अन्त में वह विविध प्रकार की माया से युध्द करते हुये लक्ष्मण के हाथों मारा जाता है।

मेघनाद की मृत्यु का समाचार सुनकर रावण स्वयं युध्द के लिये चल पड़ता है। रणभूमि अपने पुत्र के घातक लक्ष्मण को देख कर उसकी आँखो में खून उतर आता है। वह उन्हें ब्रम्ह-शक्ति से मूर्च्छित कर देता है। फिर वह स्वयं लक्ष्मण के हाथों मूर्च्छित हो जाता है और विजय-प्राप्ति के लिये यज्ञ करता है। लेकिन राम के योध्दा उसके यज्ञ का विध्वंस कर देते हैं।

सारे असुरों का संहार हो चुका है। अब रावण सम्पूर्ण असुर-कुल के विनाश का प्रतिशोध लेना चाहता है। वह बाणों की वर्षा करता है, माया रचना है लेकिन इस मायावी की सारी माया प्रभु राम के समक्ष व्यर्थ सिध्द हो जाती है। राम अनेक बार तीस-तीस बाण एक साथ चला कर रावण के दसों मस्तक एवं बीसों भुजायें काट देते हैं; लेकिन तत्काल पुनः नवीन सिर व भुजायें निकल आती हैं। द्रोही बने विर्भीषण को सम्मुख देख कर रावण प्रचण्ड शक्ति से उस पर प्रहार करता है, जिसे राम अपने ह्रदय पर झेल कर उसे बचा लेते हैं। तब विभीषण सर्वज्ञ प्रभु राम को यह रहस्य बताते हैं कि :-

नाभिकुंड पियूष बस याकें।
नाथ जिअत रावनु बल ताकें।। [43]

तब श्रीराम इकतीस बाणों का संधान करके, एक बाण से उसकी नाभि के अमृत को सोख लेते हैं और शेष तीस बाणों से उसके दसों मस्तक एवं बीसों भुजायें काट डालते हैं। अतुल बलशाली, त्रैलोक्य विजेता, अभिमानी रावण घोर गर्जन करता हुआ सदा के लिये धराशायी हो जाता है। उसका तेज श्रीराम के मुख में समा जाता है।

रावण की मृत्यु पर मन्दोदरी विलाप करती है। विभीषण भी अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं। राम की आज्ञा से विभीषण अपने जेष्ठ भ्राता की अन्त्येष्टि-क्रिया करते हैं। लक्ष्मण विभीषण को सिंहासन पर बेठा कर राजतिलक करते हैं। अशोक वाटिका से राम के पास आते हुये सीता की छाया अग्नि में प्रवेश करती है। अग्नि देवता स्वयं शरीर धारण करके सत्शीला, वास्तविक सीता का हाथ पकड़ कर उन्हें राम को समर्पित कर देते हैं।

इन्द्र युध्द-भूमि में अमृत-वर्षा करते हैं, जिससे युध्द में मृत वानर-भालू जीवित हो उठते हैं; लेकिन राक्षस नहीं। कारण, युध्द में मरते समय वे रामाकार हो कर

मुक्त हो गये थे। तत्पश्चात् राम वानर-भालुओं को अपने-अपने घर जाने के लिये विदा करते हैं। वानरराज सुग्रीव, अंगद, हनुमान, नल, नील, ऋक्षराज जामवन्त एवं विभीषण सहित वानर सेनापति विमानारूढ़ होकर राम के साथ अयोध्या की ओर प्रयाण करते हैं। मार्ग में सीता गंगा की पूजा कर उनके चरण स्पर्श करती है। गंगा हर्षित हो कर उन्हें आशीर्वाद देती है :

दीन्हि असीस हरषि मन गंगा।
सुंदरि तव अहिवात अभंगा।। [44]

इस प्रकार सब सकुशल अयोध्या पहुँच जाते हैं।

गोस्वामीजी का उद्देश्य :

सेतुबन्ध के प्रसंग में गोस्वामीजी कहते हैं कि जो पत्थर स्वयं डूब जाते हैं एवं दूसरों को भी डूबा देते हैं वे ही जहाज के समान स्वयं तैरने वाले एवं दूसरों को तारने वाले हो गये हैं। यह न तो समुद्र की महिमा है, न पत्थरों का गुण है और न वानरों की ही कोई करामात है। तुलसीदासजी का दृढ विश्वास है कि यह तो श्रीरघुवीर का प्रताप है, जिसके कारण पत्थर भी समुद्र पर तैर गये हैं। ऐसे श्रीराम को छोड़ कर जो किसी अन्य स्वामी को भजते हैं वे निश्चय ही मन्दबुध्दि हैं :

श्रीरघुवीर प्रताप ते सिंधु तरे पाषान।
ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन।। [45]

रावण के हृदय में नारी-समाज के लिये कोई आदर का भाव नहीं था। मन्दोदरी जब रावण को श्रीराम से वैर छोड कर उनके चरणों में प्रेम करने का परामर्श देती है, तब रावण कहता है कि स्त्री के हृदय में साहस, झूठ, चंचलता, छल, भय, अविवेक, अपवित्रता और निर्दयता जैसे आठ अवगुण सदा रहते हैं:

साहस अनृत चपलता माया।
भय अविवेक असौच अदाया।। [46]

नारी के सम्बन्ध में ये अनुद्‌गार गोस्वामीजी के न होकर रावण के हैं। रावण कोई आदर्श पात्र नहीं हैं। रावण इस अनुदार उक्ति के द्वारा नारी समाज के प्रति, अपनी असहिष्णुता व्यक्त करता है। ''वाल्मीकि रामायण'' के अनुसार बालि ने जब रावण को काँख में दबा कर उसका गर्व चूर-चूर कर दिया था, तब रावण उससे स्नेह-पूर्ण मैत्री-सन्धि का प्रस्ताव रखते हुये कहता है, ''वानरराज! स्त्री, पुत्र, नगर, राज्य, भोग, वस्त्र और भोजन-इन सभी वस्तुओं पर हम दोनों का संयुक्त अधिकार होगा''

दारा : पुत्रा : पुरं राष्ट्रं भोगाच्छादन भोजनम्।
सर्वमेवाविभक्तं नौ भविष्यति हरीश्वर॥ [47]

रावण के इस कथन से भी यही सिध्द होता है कि वह नारी समाज को (राज्य और वस्त्र की तरह) भोग्या ही समझता था। इस प्रकार उसने अपना खलनायकत्व सिद्ध किया है।

कोई भी व्यक्ति उत्तम कुल में जन्म लेने मात्र से महान् नहीं बनता। व्यक्ति को महानता उसके सत्कार्यों से प्राप्त होती है। रावण का जन्म ऋषि पुलस्त्य के उत्तम कुल में हुआ था; लेकिन वह अपने दुष्कृत्यों से राक्षस कहलाता है:

उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती।
सिव बिरंचि पूजेहु बहु भाँती॥ [48]

भौतिक ऐश्वर्य का मूर्तिमान प्रतीक रावण युध्द करने के लिये स्वर्ण रथ पर आरूढ़ होकर आ रहा है; लेकिन उसके प्रतिपक्षी श्रीराम हाथ में केवल धनुष-बाण लिये युध्द-स्थल में रथहीन खड़े हैं। ऐसी विषम प्रतिद्वन्द्विता की स्थिति में विभीषण का मन विचलित हो जाता है। इस प्रसंग में गोस्वामीजी दिव्य विजय-रथ के स्वरूप को प्रकट करते हुये कहते हैं: जन्म-मृत्यु रूपी दुर्जय शस्त्रु को शौर्य, धैर्य, सत्य, सदाचार, बल, विवेक, दम, परोपकार, क्षमा, दया, क्षमता, ईश्वर-भजन, वैराग्य, सन्तोष, दान, बुध्दि, श्रेष्ठ विज्ञान, निर्मल एवं अचल मन, शम (मन का वश में होना) यम, नियम, ब्राह्मण एवं गुरु का पूजन आदि सद्गुणों से जीता जा सकता है:

महा अजय संसार रिपु, जीति सकइ सो बीर।
जाके अस रथ होई दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर॥ [49]

राम का विरोध करने वाले की दुर्दशा ही होती है। रावण की प्रभुता सर्व विदित थी; लेकिन राम-विमुखता के कारण उसके कुल में कोई रोने वाला ही नहीं रहा:

राम बिमुख अस हाल तुम्हारा।
रहा न कोउ कुल रोवनिहारा॥ [50]

जिस विश्व विजेता रावण के वश में सारी सृष्टि थी, आज उसी के सिर और भुजाओं को गीदड़ खा रहे हैं। राम-विमुख के लिये ऐसा होना उचित ही हैं:

अब तव सिर भुज जंबुक खाहीं।
राम बिमुख यह अनुचित नाहीं॥ [51]

राम बड़े कृपालु हैं। उनके समान दीनों का हित करने वाला कोई नहीं है। उन्होंने सम्पूर्ण राक्षसों को परमपद दिया है। उन्होंने दुष्ट और कामी रावण को भी

वह गति प्रदान की जो मुनियों के लिये भी दुर्लभ है:

राम सरिस को दीन हितकारी।
किन्हे मुकुत निसाचर झारी॥
खल मल धाम काम रत रावन।
गति पाई जो मुनिबर पाव न॥ 52

इस प्रकार गोस्वामीजी ने इस काण्ड में नल, नील, अंगद, हनुमान, जामवन्त, सुग्रीव, विभीषण, रावण, कुंभकर्ण, मेघनाद, प्रहस्त, माल्यवन्त, कालनेमि, मन्दोदरी, दुर्मुख, देवान्तक, नरान्तक, अतिकाय, अकम्पन, महोदर, अग्निदेव, गंगा एवं घड़ियाल, मच्छ, सर्प जैसे जलचर प्राणियों का चित्रण किया है।

7. उत्तरकाण्ड :

हनुमान ब्राह्मण का रूप धारण करके भरत को राम के सकुशल आगमन का सन्देश देते हैं। राम अयोध्या पहुँच कर पुष्पक विमान को कुबेर के पास लौट जाने की आज्ञा देते हैं। पुष्पक विमान को अपने स्वामी कुबेर के पास जाने की प्रसन्नता है; लेकिन प्रभु से बिछुड़ने का दु:ख भी है।

अयोध्या पहुँचते ही विभीषण, वानरराज सुग्रीव, नल, नील, जामवन्त, अंगद और हनुमान ने मनुष्यों के मनोहर शरीर धारण कर लिये हैं। यहाँ प्रभु रामचन्द्र का राज्याभिषेक कर दिया जाता है और चारों वेद भाटों का रूप धारण करके उनका गुणगान करते हैं।

वानरों को अयोध्या में सुखपूर्वक रहते हुये छः महिने बीत जाते हैं। तब श्रीराम उन सब की सेवाओं की प्रशंसा करते हुये उन्हें प्रेमपूर्वक विदा करते हैं। सुग्रीव, विभीषण, जामवन्त, नील आदि सब को अनुपम एवं सुन्दर गहने कपड़े पहना कर विदा करते हैं। श्रीराम अपने वक्ष:स्थल की माला, वस्त्र और रत्नों के आभूषण पहना कर अंगद को भी विदा करते हैं। हनुमान सुग्रीव की अनुमति प्राप्त करके श्रीराम की सेवा में ही रह जाते हैं।

उसके बाद शिवजी पार्वती को काकभुशुण्डि की कथा सुनाते हैं।

राम-रावण युध्द में गरुड़ ने राम को नागपाश से मुक्त किया था इसलिये उन्हें अभिमान हो गया था। वे मोहवश हो गये और सोचने लगे "ये कैसे व्यापक, विकार-रहित परब्रह्म परमेश्वर हैं, जिन्हें मेरी सहायता की आवश्यकता हुई" उनके मन में भ्रम हो गया और वे सन्देह-जनित दु:ख से दुखी हो कर देवर्षि नारद के पास गये। नारद ने उन्हें ब्रह्मा के एवं ब्रह्मा ने उन्हें शंकर के पास भेजा। शंकर ने उन्हें सत्संग के लिये उत्तर दिशा में नील पर्वत पर काकभुशुण्डि के पास भेज दिया।

काकभुशुण्डि परम ज्ञानी एवं भक्त हैं। वे निरन्तर हरिगुण-गान मे लीन रहते हैं और सब पक्षी आदर सहित हरि-कथा का श्रवण करते हैं। गरुड़ काकभुशुण्डि के पास जाकर अपनी मनोव्यथा प्रकट करते हैं। काकभुशुण्डि उन्हे श्री रघुनाथजी की पूरी कथा सुनाते हैं, जिससे गरुड़ का सम्पूर्ण सन्देह मिट जाता है और भगवान् के चरणों में उनकी विशेष भक्ति हो जाती है।

काकभुशुण्डि बताते हैं कि एक बार उन्हें भी राम की बाल-क्रीड़ाओं को देखकर सच्चिदानन्द घन-स्वरूप पर सन्देह हो गया था। मन के भ्रमित होते ही हरि-प्रेरित माया उन्हें व्याप जाती है। वे बालक राम के उदर में प्रवेश करके सम्पूर्ण सृष्टि-समूह तथा जड़-चेतन जीवों को देखते हैं। वे वहाँ अपना आश्रम आदि सब कुछ देखकर व्याकुल हो जाते हैं। तब भगवान् हँसते हैं और वे भगवान के मुख से बाहर आ जाते हैं। यह बाल-चरित देख कर तथा उदर के अन्दर प्रभु की प्रभुता का स्मरण कर वे प्रभु के चरणों में गिर पड़ते हैं। उनका मोह दूर हो जाता है और वे प्रभु से उनकी प्रगाढ़ एवं निष्काम भक्ति का वरदान प्राप्त करते हैं।

काकभुशुण्डि अपने काक शरीर धारण करने का कारण बताते हुये गरुड़ से कहते हैं, "मेरा प्रथम जन्म पूर्व के एक कल्प के कलियुग में अयोध्यापुरी में एक शूद्र के रूप में हुआ था। मैं मन, वचन और कर्म से शिवजी का उपासक था; किन्तु दूसरे देवताओं की निन्दा करने वाला अभिमानी था। एक बार वहाँ अकाल पड़ा इसलिये मैं अपने इष्टदेव महाकालेश्वर के निवास-स्थान उज्जैन चला गया। वहाँ महाकालेश्वर के मन्दिर में शिव के परम उपासक एक साधु ब्राह्मण रहते थे। वे परमार्थ-तत्त्व को जानने वाले थे, और श्रीहरि के निन्दक नहीं थे। वे मुझे पढ़ाने लगे और उन्होंने मुझे शाम्भवी दीक्षा दी। मैं मोहवश हरि-भक्तों एवं विष्णु-रूप से द्रोह करने लगा। एक दिन मैं महाकाल के मन्दिर में शिव-नाम जप रहा था। उस समय गुरुजी आये, किन्तु मैंने उन्हें उठ कर प्रणाम नहीं किया। तब मन्दिर में आकाश वाणी हुई और शिवजी ने मुझे सर्प होने का शाप दिया। गुरुजी ने मेरे उध्दार के लिये शिवजी की स्तुति कि और मुझे राम-भक्ति एवं अबाध गति का वरदान प्राप्त हुआ।"

"तत्पश्चात् काल की प्रेरणा से मैं विन्ध्याचल में जाकर सर्प हुआ। फिर मैंने कई शरीर धारण किये एवं त्याग दिये लेकिन शिव-कृपा से मेरा ज्ञान बना रहा। अन्त में मैने ब्राह्मण का जन्म पाया और श्री रघुनाथजी की सगुण भक्ति करने लगा। एक दिन मैं सुमेरु पर्वत के शिखर पर लोमश ऋषि के पास गया। उन्होंने मुझे निर्गुण तत्त्व समझाया, किन्तु वे मेरे सगुण विषयक दुराग्रह पर कुपित हो उठे और उन्होंने मुझे कौआ-रूप में जन्म लेने का शाप दिया। मैं कौआ हो गया। मुनि मेरी

निर्विकारता पर प्रसन्न हो उठे और उन्होंने मुझे राम-मंत्र की दीक्षा दी। तब मैं इस आश्रम में चला आया। मुझे यहाँ निवास करते सत्ताईस कल्प व्यतीत हो गये हैं। मुझे इस पक्षी-योनि में राम-भक्ति मिली थी और अब मेरे सभी सन्देह दूर हो गये हैं। इसलिये यह शरीर मुझे अत्यन्त प्रिय है।''

काकभुशुण्डि के वचनों को सुन कर गरूड़ हर्षित हो जाते हैं। उनके हृदय के शोक, मोह, सन्देह, भ्रम आदि सब मिट जाते हैं और उनके हृदय में पूर्ण शान्ति छा जाती है।

गोस्वामीजी का उद्देश्य:

तुलसीदासजी ने गरूड़ के मोह-प्रसंग में सत्संग की महिमा का बखान किया है। शिवजी गरूड़ से कहते हैं कि सब सन्देहों का तभी नाश होता है जब दीर्घ काल तक सत्संग किया जाय :

तबहिं होइ सब संसय भंगा।
जब बहु काल करिअ सतसंगा॥ [53]

सत्संग के बिना हरि की कथा सुनने को नहीं मिलती। उसके बिना मोह नहीं भागता और मोह-नाश के बिना श्रीराम के चरणों में दृढ़ (अचल) प्रेम नहीं होता:

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होई न दृढ़ अनुराग॥ [54]

संत समागम भी बिना भगवतत्कृपा के प्राप्त नहीं हो सकता है:

गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान॥ [55]

(क) दास्य-भाव की भक्ति :

वानरों की विदाई के प्रसंग में गोस्वामीजी दास्य भाव की भक्ति का प्रतिपादन करते हैं। श्रीराम वानरों से कहते हैं, ''यह नियम है कि सेवक सभी को प्रिय लगते हैं, पर स्वाभाविक ही दास पर मेरा विशेष प्रेम है'':

सब कें प्रिय सेवक यह नीती।
मोरें अधिक दास पर प्रीती॥ [56]

श्रीराम काकभुशुण्डि से कहते हैं, ''मुझे अपने सेवक के समान प्रिय कोई भी नहीं है:-

तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा।
जेहि गति मोरि न दूसरि आसा॥
पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीं।
मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं॥ 57

काकभुशुण्डि भी गरुड़ से कहते हैं, "मैं सेवक हूँ और भगवान मेरे स्वामी हैं, इस भाव के बिना संसार रूपी समुद्र से तरा नहीं जा सकता":-

सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिध्दान्त बिचारि॥ 58

(ख) निष्काम भक्ति :

काकभुशुण्डि के प्रसंग में अविरल एवं निष्काम भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है। प्रभु राम प्रसन्न हो कर काकभुशुण्डि से अष्ट सिध्दियाँ, मोक्ष, ज्ञान, विवेक, वैराग्य, तत्त्वज्ञान आदि का वरदान माँगने के लिये कहते हैं। लेकिन महाज्ञानी काकभुशुण्डि प्रभु से उनकी प्रगाढ़ एवं विशुध्द भक्ति का ही वरदान माँगते हैं:

अबिरल भगति बिसुध्द तव श्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जागीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव॥
भगत कल्पतरु प्रनत हित कृपा सिंधु सुखधाम।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम॥ 59

(ग) निर्गुण एवं सगुण का समन्वय :

दर्शन और भक्ति दोनों ही क्षेत्रों में ब्रह्म के सगुण एवं निर्गुण रूप को लेकर बराबर विवाद रहा है। शंकराचार्य ने जहाँ निर्गुण ब्रह्मवाद का प्रतिपादन किया है, वहीं रामानुजाचार्य एवं वल्लभाचार्य ने ब्रह्म के सगुण रूप पर बल दिया है। लोमश एवं काकभुशुण्डि की कथा द्वारा गोस्वामीजी ने उनके समय में साधु-समाज में चलने वाले इसी विचार की ओर इंगित किया है। काकभुशुण्डि द्विज के रूप में सगुण ब्रह्म की आराधना की विधि जानना चाहते हैं, लेकिन लोमश ऋषि सगुण मत का खण्डन करके निर्गुण का निरूपण करते हैं। एक बार तो वे कुपित हो कर उन्हें कौआ होने का शाप दे देते हैं; लेकिन अन्त में हर्षित होकर उन्हें राम-नाम का मन्त्र दे कर अविरल राम-भक्ति का आशीर्वाद देते हैं:

राम भगति अबिरल उर तोरें।
बसिहि सदा प्रसाद अब मोरें॥ 60

चारों वेद भी भाटों का रूप धारण कर श्रीराम का गुणगान करते हैं। वे श्रीराम को ''सगुण एवं निर्गुण रूप'' कह कर सम्बोधित करते हैं:

जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।
दसकंधरादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल भुज बल हने॥ 61

वे तो यहाँ तक कहते हैं, ''जो लोग ब्रह्म को अजन्मा एवं अद्वैत कह कर ध्यान करते हैं, वे ऐसा करते रहें। लेकिन हम तो नित्य आपका सगुण यश ही गाते हैं'' :

जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मन पर ध्यावहीं।
ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं॥ 62

इस प्रकार गोस्वामीजी ने राम के सगुण स्वरूप की भक्ति करते हुये भी सगुण एवं निर्गुण का समन्वय किया है। इसी प्रसंग में काकभुशुण्डि ने भक्ति और ज्ञान का भी समन्वय किया है:

भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव संभव खेदा॥ 63

(घ) शैवों एवं वैष्णवों का समन्वय :

गोस्वामीजी ने काकभुशुण्डि के शूद्र के रूप में उज्जैन में शिवोपासना के प्रसंग द्वारा शैवों एवं वैष्णवों का समन्वय किया है। उनके समय में शैवों और वैष्णवों में परस्पर घोर वैषम्य और कटुता आ चुकी थी। उन्होंने इस क्षेत्र में व्याप्त विषमता का निराकरण कर राम और शिव की अभिन्नता द्वारा पारस्परिक वैमनस्य का परिहार किया है। काकभुशुण्डि के गुरु शिव के उपासक थे; पर वे श्रीहरि की निन्दा नहीं करते थे:

परम साधु परमारथ बिंदक।
संभु उपासक नहिं हरि निंदक॥ 64

लेकिन काकभुशुण्डि मोहवश श्रीहरि के भक्तों और द्विजों को देखते ही जल उठता था और भगवान् विष्णु से द्रोह करता था:

मैं खल मल संकुल मति नीच जाति बस मोह।
हरिजन द्विज देखें जरउँ करउँ बिष्नु कर द्रोह॥ 65

तब गुरुजी ने बताया, ''शिव-सेवा साधन है और राम भक्ति साध्य है। शिव-सेवा जे जो मिलता है, उसी से तुम द्रोह करते हो। शिव-सेवा का फल है श्रीराम के

चरणों में अविरल प्रेम, अविरल निष्ठा'' :

सिव सेवा कर फल सुत सोई।
अविरल भगति राम पद होई॥ 66

(ड़) पुनर्जन्म का सिध्दान्त :

काकभुशुण्डि अनेक योनियों में जन्म लेता रहता है और अपना शरीर त्यागता रहता है, जैसे मनुष्य पुराना वस्त्र त्याग देता है और नया धारण कर लेता है:

जोइ तन धरउँ तजउँ पुनि अनायास हरिजान।
जिमि नूतन पट पहिरइ नर परिहरइ पुरान॥ 67

यहाँ गोस्वामीजी पुनर्जन्म के सिध्दान्त का प्रतिपादन करते हैं। उनके विचारों पर 'श्रीमद् भगवद् गीता' के निम्न श्लोक का प्रभाव दृष्टव्य है:

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा,
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥ 68

(च) श्रेष्ठता का आधार ज्ञान :

गरुड़ पक्षीराज हैं, महाज्ञानी हैं एवं हरि के वाहन भी हैं। उन्हें भी ज्ञान-प्राप्ति के लिये एक कौओ के पास जाना पडा। वास्तव में ज्ञान किसी की भी पैतृक-सम्पत्ति नहीं है। श्रेष्ठ वही है, जिसके पास ज्ञान है और जो छोटे-बड़े या ऊँच-नीच की भावना से ऊपर उठ जाता है। गरुड़ ने काकभुशुण्डि के सानिध्य में बैठ कर ज्ञानार्जन किया और अपने अभिमान से मुक्ति पाई।

इस प्रकार गोस्वामीजी ने इस काण्ड में विभीषण, सुग्रीव, अंगद, हनुमान, जामवन्त, नल, नील, काकभुशुण्डि, गरुड़, पुष्पक विमान एवं चारों वेदों का चित्रण किया है।

निष्कर्ष :

भारतीय संस्कृति में 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' के सिध्दान्त का अनुसरण करते हुये पशु, पक्षी, वन्य जीव, वनस्पति एवं सम्पूर्ण चराचर सृष्टि के प्रति आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित किया गया है। यहाँ मानवेतर प्राणि-सृष्टि के चित्रण की एक सुदीर्घ परम्परा रही है। श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण, पंचतन्त्र, पौराणिक एवं जातक कथाओं, मेघदूत, अभिज्ञान शाकुन्तलम्, नल-दमयन्ती, पद्मावत आदि ग्रन्थों में मानवेतर प्राणियों

से सम्बन्धित कथायें हैं। तुलसीदासजी ने इसी परम्परा का अवलम्ब करते हुये 'रामचरितमानस' में मानवेतर प्राणि-सृष्टि का चित्रण किया है।

बालकाण्ड में रावण, कुंभकर्ण एवं विभीषण के जन्म की कथा का वर्णन करते हुये बताया गया है कि तपस्या से शक्ति प्राप्त होती है, लेकिन जब प्रजा-उत्पीड़न में उसका दुरुपयोग होता है तो उसके दमन के लिये दैविक शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। गोस्वामीजी ने बादशाहों द्वारा उत्पीड़ित तत्कालीन समाज को सान्त्वना दी है कि दैविक शक्ति उनके दुखों का विमोचन करेगी।

'अयोध्याकाण्ड' में गोस्वामीजी ने मानवेतर प्राणियों में जड़ चेतन, चर, अचर, सब को समाहित करके प्रकृति के विभिन्न उपादानों में मानवता के दर्शन किये हैं। उन्होंने प्रकृति को भावुकता की कसौटी पर कस कर हमारा ध्यान विश्व में व्याप्त चेतना की ओर आकर्षित किया है।

'अरण्यकाण्ड' में गोस्वामीजी ने जयन्त की कथा के रूप में प्रभुता-सम्पन्न पिता की दुष्ट सन्तान की दुर्गति की ओर संकेत किया है। शूर्पणखा विलासिता का प्रतीक है। विलासिता जन-जीवन में भव्य रूप धारण करके प्रवेश करती है, लेकिन चारित्रिक दृढ़ता से उसका दमन किया जा सकता है। गोस्वामीजी ने ऋषि-मुनियों का भक्षण एवं यज्ञों का विध्वंस करने वालों को राक्षस की संज्ञा दी है। गृध्रराज जटायु परमार्थ का प्रतीक है।

'किष्किन्धाकाण्ड' में राम-हनुमान मिलन के प्रसंग में दास्य-भाव की भक्ति का प्रतिपादन किया गया है। बालि-वध के प्रसंग में सामाजिक सुव्यवस्था के लिये सच्चरित्रता को आवश्यक बताया गया है। सुग्रीव के राम-कार्य के विस्मरण द्वारा यह बताया गया है कि भोगों में लिप्त व्यक्ति कर्तव्य-च्युत हो जाता है। सम्पाति-प्रसंग में राम-कृपा के चमत्कार की ओर संकेत है। सम्पाति राम-कृपा से सुन्दर शरीर प्राप्त कर लेता है।

'सुन्दरकाण्ड' में लंकिनी के प्रसंग में सत्संग की महिमा का वर्णन किया गया है। गोस्वामीजी ने सेवा के कारण हनुमान को देवत्व प्रदान किया है। हनुमान सीता-सुधि के लिये जिस- जिस महल में प्रवेश करते हैं, उसे 'मन्दिर' नाम से सम्बोधित किया गया है। विभीषण के रूप में एक सच्चे वैष्णव का परिचय दिया गया है, जिनके महल में भगवान का मन्दिर है। वहाँ रामायुध अंकित है, तुलसी के वृक्ष-समूह लगे हुये हैं। वे जगते ही राम-नाम का उच्चारण करते हैं। समुद्र को जड़ शब्द से सम्बोधित किया गया है। वह नारी-समाज के प्रति अनुदार शब्दों का प्रयोग करके अपनी जड़ता सिद्ध कर देता है।

'लंकाकाण्ड' में सेतुबन्ध के प्रसंग में राम-कृपा की महिमा का वर्णन किया गया है, जिससे पत्थर भी समुद्र पर तैर जाते हैं। कोई भी व्यक्ति मात्र उत्तम कुल में जन्म लेने से महान् नहीं होता। रावण का जन्म उत्तम कुल में हुआ था, लेकिन वह अपने दुष्कृत्यों के कारण खलनायक है। वह नारी-समाज को भोग्या समझता है। वह नारी-समाज के प्रति असहिष्णुता प्रकट करता है। राम का विरोध करने वाले की दुर्गति होती है। विश्व-विजेता रावण के कुल में कोई रोने वाला भी नहीं बचा।

'उत्तरकाण्ड' में गरुड़ के मोह-प्रसंग में सत्संग की महिमा का वर्णन किया गया है। अयोध्या में वानरों की विदाई के प्रसंग में दास्य-भाव की भक्ति एवं काकभुशुण्डि के प्रसंग में अविरल एवं निष्काम भक्ति का प्रतिपादन किया गया है। लोमश एवं काकभुशुण्डि के प्रसंग में सगुण एवं निर्गुण का समन्वय करते हुये सगुण-भक्ति की श्रेष्ठता बताई गई है। यहाँ ज्ञान एवं भक्ति तथा शैवों एवं वैष्णवों का भी समन्वय किया गया है। काकभुशुण्डि अनेक योनियों में जन्म लेता है। इस प्रसंग के द्वारा पुनर्जन्म के सिध्दान्त का प्रतिपादन किया गया है। हरि के वाहन पक्षीराज गरुड़ काकभुशुण्डि के सानिध्य में बैठ कर ज्ञानार्जन करते हैं। श्रेष्ठता का आधार छोटा या बड़ा होना नहीं, बल्कि ज्ञान ही है।

इस प्रकार गोस्वामीजी ने रामचरितमानस में मानवेतर प्राणियों का प्रसंगानुसार निर्देश किया है।

■ □ ■

■ संदर्भ - सूची ■

1. रामचरितमानस / बालकाण्ड / 7 (ग)
(सटीक मोटा टाइप)
तुलसीदास
टीकाकार हनुमानप्रसाद पोद्दार
पृष्ठ 11

2. वही / बालकाण्ड / 7 (घ)
पृष्ठ 12

3. श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण / युद्धकाण्डम् / 61/20
(द्वितीय भाग)
महर्षि वाल्मीकी प्रणीत
पृष्ठ 1225

4. रामचरितमानस / बालकाण्ड / 182 (ख)
(सटीक मोटा टाइप)
तुलसीदास
टीकाकार हनुमानप्रसाद पोद्दार
पृष्ठ 173

5. वही / बालकाण्ड / 120 (घ) / 3, 4
पृष्ठ 123

6. वही / बालकाण्ड / 183 / 1, 2
पृष्ठ 175

7. वही / अयोध्याण्ड / 82 / 4
पृष्ठ 404

8. वही / अयोध्याकाण्ड / 83, 83 / 1
पृष्ठ 404

9. वही / अयोध्याकाण्ड / 99
पृष्ठ 418

10. वही / अयोध्याकाण्ड / 100 / 3
पृष्ठ 420

11. वही / अयोध्याकाण्ड / 103
पृष्ठ 422

12. वही / अयोध्याकाण्ड / 122 / 4
पृष्ठ 439

13. वही / अयोध्याकाण्ड / 133 / 1
पृष्ठ 449

14. वही / अयोध्याकाण्ड / 137 / 1
पृष्ठ 452

15. वही / अयोध्याकाण्ड / 141 / 4
पृष्ठ 456

16. वही / अयोध्याकाण्ड / 142
पृष्ठ 456

17. वही / अयोध्याकाण्ड / 204 / 4
पृष्ठ 510

18. वही / अयोध्याकाण्ड / 237 / 3
पृष्ठ 539

19. वही / अयोध्याकाण्ड / 276 / 4
पृष्ठ 574

20. वही / अयोध्याकाण्ड / 320 / 3
पृष्ठ 611

21. वही / अरण्यकाण्ड / 9
पृष्ठ 628

22. वही / अरण्यकाण्ड / 29 / 5
पृष्ठ 659

23. वही / अरण्यकाण्ड / 32
पृष्ठ 663

24. वही / अरण्यकाण्ड / 1 / 3
पृष्ठ 619

25. वही / अरण्यकाण्ड / 18 / 3
पृष्ठ 643

26. वही / अरण्यकाण्ड / 27 / 5
पृष्ठ 655

27. वही / अरण्यकाण्ड / 30 / 5
पृष्ठ 661

28. वही / किष्किन्धाकाण्ड / 2 / 4
पृष्ठ 682

29. वही / किष्किन्धाकाण्ड / 6 / 1
पृष्ठ 686

30. वही / किष्किन्धाकाण्ड / 8 / 4
पृष्ठ 689

31. श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण / किष्किन्धा / 18 / 22, $22\frac{1}{2}$
(प्रथम भाग)
अनुवादक पं. रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'
पृष्ठ 722

32. रामचरितमानस / किष्किन्धाकाण्ड / 20 / 2
(सटीक मोटा टाइप)
तुलसीदास
टीकाकार हनुमानप्रसाद पोद्दार
पृष्ठ 700

33. वही / सुन्दरकाण्ड / 4
पृष्ठ 719

34. वही / सुन्दरकाण्ड / 4 / 3
पृष्ठ 719

35. वही / सुन्दरकाण्ड / 4 / 4
पृष्ठ 719

36. वही / सुन्दरकाण्ड / 4 / 4
पृष्ठ 719

37. वही / सुन्दरकाण्ड / 5
पृष्ठ 719

38. वही / सुन्दरकाण्ड / 5 / 2
पृष्ठ 720

39. वही / सुन्दरकाण्ड / 6 / 3
पृष्ठ 721

40. वही / सुन्दरकाण्ड / 58 / 3
पृष्ठ 769

41. वही / सुन्दरकाण्ड / 57
पृष्ठ 768

42. अध्यात्म रामायण / युद्धकाण्ड / 3 / 61
अनुवादक मुनिलाल
पृष्ठ 262

43. रामचरितमानस / लंकाकाण्ड / 101 / 3
(सटीक मोटा टाइप)
तुलसीदास
टीकाकार हनुमानप्रसाद पोद्दार
पृष्ठ 885

44. वही / लंकाकाण्ड / 120 / 5
पृष्ठ 909

45. वही / लंकाकाण्ड / 3
पृष्ठ 777

46. वही / लंकाकाण्ड / 15 / 2
पृष्ठ 789

47. श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण / उत्तरकाण्ड / 34 / 41
(द्वितीय भाग)
महर्षि वाल्मीकि
अनुवादक पं. रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'
पृष्ठ 1548

48. रामचरितमानस / लंकाकाण्ड / 19 / 2
(सटीक मोटा टाइप)
तुलसीदास
टीकाकार हनुमानप्रसाद पोद्दार
पृष्ठ 793

49. वही / लंकाकाण्ड / 80 / (क)
पृष्ठ 857

50. वही / लंकाकाण्ड / 103 / 5
पृष्ठ 888

51. वही / लंकाकाण्ड / 103 / 6
पृष्ठ 889

52. वही / लंकाकाण्ड / 113 / 5
पृष्ठ 902

53. वही / उत्तरकाण्ड / 60 / 2
पृष्ठ 976

54. वही / उत्तरकाण्ड / 61
पृष्ठ 976

55. वही / उत्तरकाण्ड / 125 / (ख)
पृष्ठ 1054

56. वही / उत्तरकाण्ड / 15 / 4
पृष्ठ 935

57. वही / उत्तरकाण्ड / 85 / 4
पृष्ठ 1001

58. वही / उत्तरकाण्ड / 119 / (क)
पृष्ठ 1043

59. वही / उत्तरकाण्ड / 84 / (क), 84 / (ख)
पृष्ठ 999

60. वही / उत्तरकाण्ड / 112 / 7
पृष्ठ 1034

61. वही / उत्तरकाण्ड / 12 / 1
पृष्ठ 929

62. वही / उत्तरकाण्ड / 12 / 6
पृष्ठ 931

63. वही / उत्तरकाण्ड / 114 / 7
पृष्ठ 1037

64. वही / उत्तरकाण्ड / 104 / 2
पृष्ठ 1020

65. वही / उत्तरकाण्ड / 105 / (क)
पृष्ठ 1020

66. वही / उत्तरकाण्ड / 105 / 1
पृष्ठ 1021

67. वही / उत्तरकाण्ड / 109 / (ग)
पृष्ठ 1027

68. श्रीमद् भगवद् गीता / 2 / 22
(तत्त्व विवेचनी हिन्दी टीका सहित)
टीकाकार जयदयाल गोयन्दका
पृष्ठ 73

■ □ ■